शुक्रनीति : शुक्राचार्य

शुक्रनीति एक प्रसिद्ध नीतिग्रन्थ है। इसकी रचना करने वाले शुक्र का नाम महाभारत में 'शुक्राचार्य' के रूप में मिलता है। शुक्रनीति के रचनाकार और उनके काल के बारे में कुछ भी पता नहीं है। शुक्रनीति में २००० श्लोक हैं जो इसके चौथे अध्याय में उल्लिखित है। उसमें यह भी लिखा है कि इस नीतिसार का रात-दिन चिन्तन करने वाला राजा अपना राज्य-भार उठा सकने में सर्वथा समर्थ होता है। इसमें कहा गया है कि तीनों लोकों में शुक्रनीति के समान दूसरी कोई नीति नहीं है और व्यवहारी लोगों के लिये शुक्र की ही नीति है, शेष सब 'कुनीति' है। शुक्रनीति की सामग्री कामन्दकीय नीतिसार से भिन्न मिलती है। इसके चार अध्यायों में से प्रथम अध्याय में राजा, उसके महत्व और कर्तव्य, सामाजिक व्यवस्था, मन्त्री और युवराज सम्बन्धी विषयों का विवेचन किया गया है।

प्राचीन भारतीय रानीतिक चिंतन में शुक्रनीति का महत्वपूर्ण स्थान है। शुक्रनीति के रचयिता शुक्राचार्य का नाम प्राचीन भारतीय चिंतन में सम्मानित स्थान रखता है। दण्डी के 'दशकुमारचरितम' में राजनीति शास्त्रकारों के नामोल्लेख में सर्वप्रथम स्थान शुक्राचार्य को ही प्रदान किया है। शुक्रनीति इतना प्राचीन ग्रंथ होते हुए भी इसमें ऐसे अनेक विषयों का विवरण है जो आज भी प्रासांगिक हैं और उपयोगी भी है। शुक्रनीति चिंतन की गौरवशाली एवं समृद्ध परम्परा का ज्ञान होता है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' एवं मैकियावली के 'द प्रिंस' के समान शुक्र की शुक्रनीति में भी राजा को शासन करना सिखाया गया है। इस प्रकार इसमें राजनीति का सैद्धान्तिक नहीं वरन् व्यावहारिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है। शुक्र के अनुसार, "सभी आशंकाओं को त्यागकर राजा को ऐसी नीति का पालन करना चाहिए जिससे शत्रु को मारा जा सके अर्थात् विजय प्राप्त हो"। शुक्राचार्य के अनुसार, उन्होंने अपने शिष्यों के सामने ब्रह्मा के नीतिशास्त्र का सार प्रस्तुत किया है। शुक्र नीति मे चार मूल अध्याय है। इसके विभिन्न संस्करणों में पंचम् अध्याय 'खिल नीति' (शेष या अवशिष्ट नीति) के रूप में है जो मूल ग्रंथ का भाग नहीं है।

रचनाकाल

शुक्राचार्य के काल का निर्धारण अत्यंत कठिन कार्य है। अपनी विषयवस्तु व शैली के आधार पर यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद की रचना प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि शुक्र नाम वस्तुतः चिन्तन की एक विशेष परम्परा को व्यक्त करता है, एक व्यक्ति को नहीं। भारतीय राजनीतिक चिन्तन के स्रोत के रूप में इसे एक प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। यद्यपि शुक्रनीतिसार के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है, किन्तु प्रायः सभी आधुनिक विद्वान इस पर सहमत हैं कि यह वैदिककालीन रचना नहीं है अपितु ईसा के बाद की कृति है। काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार, यह 8वीं शताब्दी की रचना है। इसके ग्रंथकार को इसी काल का राजशास्त्री कहा जा सकता है।

शुक्रनीति में दण्डनीति की श्रेष्ठता

शुक्रनीति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समान मूलतः राजनीतिक प्रकृति का ग्रन्थ है इसमें शुक्र ने कौटिल्य एवं कामन्दक के समान ज्ञान की चार शाखाएँ - आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति को स्वीकार किया है। शुक्रनीति के टीकाकार, बी०के० सरकार के अनुसार, "दण्डनीति शासन करने तथा निर्देश देने से संबंधित विद्या है।" यह कहना उचित है कि शुक्र ने विभिन्न प्रसंगो में दण्ड व नीति का जो महत्व बताया है वह दण्डनीति अर्थात् राजनीतिशास्त्र का ही महत्व हैं। दण्ड नीति या नीतिशास्त्र के अलावा जितने शास्त्र हैं, वे सम्पूर्ण मानव व्यवहार के सीमित भाग से ही संबंधित होते हैं, किंतु नीतिशास्त्र सम्पूर्ण मानव व्यवहार से संबंधित शास्त्र है। इस शास्त्र की सहायता से ही राजा अपने आधारभूत दायित्वों की पूर्ति में सफल होता है, किंतु जो राजा नीति का त्याग करके अच्छे व्यवहार करता है, वह दुःख भोगता है और उसके सेवक भी कष्ट पाते है। श्यामलाल पाण्डे ने शुक्रनीति सार का महत्व बताते हुए कहा है कि यह प्राचीन भारत की दण्ड प्रधान विचारधारा पर आधारित एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ है।

शुक्राचार्य के अनुसार धर्म, अर्थ, काम का प्रधान कारण एवं मोक्ष को सुनिश्चित करने वाला तत्व नीतिशास्त्र को ही माना जा सकता है। शुक्रनीति में राजनीतिक चिंतन के समस्त महत्वपूर्ण पक्षों - दार्शनिक, अवधारणात्मक, संरचनात्मक, प्रक्रियात्मक को पर्याप्त महत्व के साथ चित्रित किया गया है। राज्य के प्रयोजन, राजसत्ता पर नियंत्रण आदि सैद्धान्तिक पक्षों के साथ-साथ दण्ड व न्यायिक प्रक्रिया, राज्य का प्रशासन, राज्य की सुरक्षा व युद्ध, अन्तरराज्य सम्बन्ध आदि ऐसे विषयों का जो राज्य के व्यावहारिक पक्षों से संबंधित हैं, विशद् विवेचन किया गया है।

शुक्रनीति में राज्य सम्बन्धी विचार

शुक्रनीति में राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है। सम्पूर्ण ग्रंथ में मात्र एक श्लोक ऐसा है जिसे राज्य की उत्पत्ति से संबंधित माना जा सकता है। शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में कहा गया है, "प्रजा से अपना वार्षिक कर वेतन के रूप में स्वीकार करने से स्वामी के रूप में स्थित राजा को ब्रह्मा ने प्रजा के पालनार्थ सेवक बनाया है"। इस प्रकार जहाँ राज्य की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा बताकर, राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त का समर्थन किया है, राजा को प्रजा-सेवक बताकर उसके प्रजा-पालन के दायित्व पर बल दिया और उसके किसी भी प्रकार के दैवी अधिकार को स्वीकार नहीं किया है।[
शुक्र ने राज्य को एक अनिवार्य एवं स्वाभाविक संस्था स्वीकार किया है क्योंकि इस संसार के अभ्युदय का आधार राज्य है। जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र की वृद्धि का कारण है, उसी प्रकार राज्य जनता के अभ्युदय का मूल आधार है। राज्य ही न्याय द्वारा धर्म, अर्थ, काम (त्रिवर्ग) की सिद्धि कराता है। जैसे मल्लाह के अभाव में नौका नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार राजा के नेतृत्व के अभाव में प्रजा जन के नष्ट होने की सम्भावना रहती है। शुक्र ने राज्य को प्रजा की भौतिक सुरक्षा के लिए ही नहीं, वरन् नैतिक उत्थान के लिऐ भी उत्तरदायी माना है।

राज्य की परिभाषा एवं सप्तांग सिद्धान्त

प्राचीन भारतीय चिंतन में राज्य को **सप्तांग राज्य** के रूप में परिभाषित किया गया है, शुक्र भी इसका अपवाद नहीं हैं। राज्य सात अंगो से बना सावयवी है, यह (1) स्वामी, (2) अमात्य, (3) मित्र, (4) कोश, (5) राष्ट्र, (6) दुर्ग, (7) सेना से बना है। शुक्रनीति में कहा गया है, "राज्य के इन सात निर्माणक तत्वों में स्वामी सिर, अमात्य नेत्र, मित्र कर्ण, कोश मुख, सेना मन, दुर्ग भुजाऐं एवं राष्ट्र पैर हैं।" एक अन्य प्रसंग में राज्य की तुलना वृक्ष से करते हुऐ राजा को इस वृक्ष का मूल, मंत्रियों को स्कन्ध, सेनापति को शाखा, सेना को पल्लव, प्रजा को धूल, भूमि से प्राप्त होने वाले कारकों को फल एवं राज्य की भूमि को बीज कहा गया हैं। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ आधुनिक राजनीतिक विचारक राज्य के 4 निर्माणक तत्व - जनसंख्या, भू-भाग, सरकार एवं संप्रभुता मानते है वहीं शुक्र 7 निर्माणक तत्व मानते हैं।
शुक्रनीति में राज्य व राष्ट्र के मध्य अंतर को स्पष्ट करते हुऐ कहा गया है कि किसी विशिष्ट राष्ट्र पर संप्रभु का नियंत्रण उसे राज्य का रूप प्रदान कर देता है। इस प्रकार शुक्रनीति राज्य व राष्ट्र के मध्य अंतर को आधुनिक राजनीतिक विचारकों की तरह स्पष्ट करती है।

राज्य का कार्य क्षेत्र

शुक्रनीति में राज्य के कार्य क्षेत्र को अत्यंत व्यापक बताया गया है। शुक्र ने राज्य के कर्त्तव्यों के 8 प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख किया है -

1. दुष्टों का निग्रह,
2. प्रजा की सुरक्षा,
3. दान,
4. प्रजा का परिपालन,
5. न्यायपूर्वक कोष का अर्जन,
6. राजाओं से कर वसूल करना,
7. शत्रुओं का मान-मर्दन
8. निरन्तर भूमि का अर्जन करना।]

राज्य के दायित्वों की इस सूची से यह स्पष्ट है कि शुक्र ने राज्य के विस्तृत कार्यक्षेत्र का प्रतिपादन किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि राज्य को अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए आवश्यक साधन भी अर्जित करने चाहिए। शुक्र ने राज्य के कार्यक्षेत्र में निम्नलिखित प्रमुख कार्य सम्मिलित किए हैं :

- **(1) प्रजा एवं राजनीतिक समाज की रक्षा करना** :- राज्य का यह सर्वाधिक महत्पूर्ण कार्य है - बाहरी एवं आंतरिक शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करना। आंतरिक शांति व्यवस्था को बनाये रखने की दृष्टि से शुक्र ने राजा को निर्देशित किया है कि वह दुष्टों एवं आक्रमण करने वालों से सज्जनों की रक्षा करें। शुक्रनीतिसार ने राजधानी प्रशासन तथा ग्राम-प्रशासन के वर्णन में भी आंतरिक शांति एवं व्यवस्था को बनाए रखने पर जोर दिया है और राज्य द्वारा विभिन्न मार्गों को डाकुओं व उपद्रवियों से सुरक्षित रखने की आवश्यकता को स्वीकारा है। शुक्र के अनुसार, इस दायित्व के पालन में उदासीनता के कारण प्रजा में शासन के प्रति विरोध का भाव पनपने लगता है।

- **(2) लोक कल्याण** :- शुक्र ने राज्य की अहस्तक्षेपवादी धारणा के विपरीत, राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप का प्रतिपादन किया है।

    - (क) राजा स्वंय के सुख के लिए प्रजा को कष्ट नहीं पहुंचाए क्योकि प्रजा के दुःखी रहने से राजा नष्ट हो सकता है।

    - (ख) सभी विद्याओं, विज्ञानो व कलाओं का विकास, विद्वानों का सम्मान।

    - (ग) प्रजा में धर्म की वृद्धि के उपाय करना, देवालय बनवाना।

- (घ) कुएँ, तालाब, बावड़ी का निर्माण कराना, नदियों पर पुल बनवाना, सराय बनवाना, वृक्ष लगवाना, पर्यावरण की रक्षा करना।

- (च) कृषि, व्यापार की उन्नति करना।

- **(3) अर्थव्यवस्था का नियंत्रण** :- अर्थव्यवस्था का नियंत्रण शुक्र के अनुसार राज्य का आवश्यक दायित्व है। शुक्र ने अनुज्ञा (लाइसेंस) के बिना द्युत क्रीड़ा, शिकार करने व शस्त्र धारण करने का निषेध किया है। शुक्र नीति में व्यवसाय व वाणिज्य के संदर्भ में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए राज्य के पूर्ण नियंत्रण को स्वीकार किया है। शुक्र ने विभिन्न पदार्थो के उत्पादन, विक्रय, चिकित्सा आदि व्यवसायों का विनियमन करने की अपेक्षा की है। व्यापारी पदार्थों में किसी प्रकार की मिलावट न करें, इसका भी निर्देश दिया है। यदि राजकीय आदेशों का उल्लंघन किया जाए तो पक्षपात रहित होकर दण्ड देने के लिए राजा को तत्पर रहना चाहिए। राजमार्गो की मरम्मत करवाना व यात्रियों के माल की रक्षा करना भी राज्य का दायित्व है।[

  शुक्र के अनुसार, सेना एवं राष्ट्र की रक्षा एवं समृद्धि के लिए कोष का आधारभूत महत्व है। किंतु राजा को कोष का अन्यायपूर्वक संग्रह नहीं करना चाहिए। यदि राजा संकटकाल का मुकाबला करने के लिए प्रजा से अधिक धन वसूल करे तो संकटकाल की समाप्ति पर प्रजा को ब्याज सहित धन वापिस करना चाहिए।

- **(4) राज्य के सामाजिक दायित्व** :- सामाजिक व्यवस्था का नियमन और सामाजिक जीवन में धर्म और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना शुक्र के अनुसार राजा को शक्ति पूर्वक प्रजा से वर्ण-धर्म का पालन कराना चाहिए। किंतु इसके साथ ही शुक्र ने बताया कि इस संसार में जन्म से ही कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ नहीं होता है, वरन् अपने गुणों के आाधार पर ही मनुष्यों में यह भेद किया जाता है। मनुष्यों द्वारा विभिन्न कलाओं व विद्याओं को अपनाने से ही अनेक जातियों का विकास हुआ है। श्रेष्ठता कुल या जाति से नहीं प्राप्त होती वरन् गुणों से ही प्राप्त होती है। जब राजा व प्रजा अपने-अपने धर्म व नीति का पालन करते है तब राज्य चिरस्थायी होता है। शुक्र का राज्य सामाजिक नैतिकता का संरक्षक है, राजा के गुणों का ही प्रजा अनुकरण करती है।[

- **(5) राज्य का शैक्षणिक दायित्व** :- राज्य ही शिक्षा के प्रसार के लिए उत्तरदायी है, योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देना राज्य का ही दायित्व है। विद्या और कला की उन्नति राज्य की ही जिम्मेदारी है। योग्य, बुद्धिमान व्यक्तियों के सम्मान व भरण-पोषण की व्यवस्था भी राज्य का दायित्व है।]

- **(6) विधि एवं न्याय व्यवस्था** :- शुक्र ने कौटिल्य के समान ही अन्य विधिस्रोतों के अतिरिक्त राजाज्ञा को भी विधि का स्रोत माना है। शुक्र ने 'पंडित' नामक मंत्री का उल्लेख किया है, जो विधि विशेषज्ञ है। यह राजा का प्रमुख कर्तव्य है कि वह मुकदमों का उचित प्रकार से निर्णय करे और अपने आदेशों का पालन कराए। राजा को न्यायकार्य द्वारा दुष्टों का दमन करना चाहिए। लेकिन यदि राजा अपने न्याय कार्य की उपेक्षा करता है तो शुक्रनीति के अनुसार उसे घोर कष्ट सहन करने पड़ते है।

- **(7) प्रशासनिक व्यवस्था का कुशल संचालन** :- शुक्रनीति में न केवल प्रशासन के सन्दर्भ में विभागीय एवं कार्यालय पद्धति का उल्लेख किया गया है वरन् प्रशासन को लिखित आदेशों पर भी आधारित किया है। राज्य के दायित्वों को पूरा करने हेतु, एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है। शासन को निरंतर सजग रहते हुए यह देखना चाहिए कि प्रशासनिक अधिकारी व कर्मचारी अपने दायित्वों का भली प्रकार पालन करते रहें एवं प्रजा को पीड़ित न करें। इसके साथ ही कर्मचारियों के हितों का ध्यान रखना भी राज्य का ही दायित्व है। शुक्र ऐसे प्रथम भारतीय विचारक हैं, जिन्होंने प्रशासन के आंतरिक पक्षों का भी विस्तृत विवरण दिया है।

- **(8) परराष्ट्र सम्बन्ध** :- शुक्र ने राज्य से अपेक्षा की है कि वह पर राष्ट्र सम्बन्धों के संचालन में जनहित एवं सुरक्षा के साथ-साथ राष्ट्रहित का भी ध्यान रखे। राज्य को अनावश्यक युद्धों व टकराव से बचाए। विदेश नीति के संचालन के लिए शुक्र व कौटिल्य के समान ही शासक के लिए कुछ सिद्धान्त व नियम निर्धारित किए है। नीति के चार उपाय एवं **षड्गुण मंत्र** इसमें प्रमुख है। राज्यों के मध्य संबंधों में 'शक्ति' के महत्व का प्रतिपादन करके शुक्र ने यथार्थवादी दृष्टि अपनाई है। राजा को विदेशनीति का संचालन इस प्रकार करना चाहिए कि अन्य राज्य उससे अधिक शक्तिशाली न हो जाएँ। शुक्र ने शांतिवादी नीति अपनाते हुऐ कहा है कि अन्य उपाय असफल होने पर ही युद्ध या दण्ड को अपनाना चाहिए शुक्र ने पराजित राजा के प्रति जिस प्रकार के व्यवहार का उल्लेख किया है, उससे उसकी मानवतावादी दृष्टि का ज्ञान होता है।]

राजा एवं राजपद

शुक्र ने राजपद को केन्द्रीय महत्व प्रदान किया है, राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा-रंजन है। राजा के बिना प्रजा ऐसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे मल्लाह रहित नौका नष्ट हो जाती है।[

राजपद सम्बन्धी विभिन्न अवधारणा

- **(1) देवत्व सम्बन्धी धारणा** :- शुक्र के अनुसार राजा का निर्माण आठ देवताओं के अंश से हुआ है - इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा तथा कुबेर। जो राजा इन देवताओं के गुणों के अनुसार सदाचरण करता है, वही वास्तव में देवांश राजा होता है।]

- **(2) राजपद की तप सम्बंधी धारणा** :- शासन करना तप के समान माना जाता है और तप तीन प्रकार का होता है - सात्विक, राजसिक और तामासिक। सात्विक राजा सभी कर्त्तव्यों का नीति के अनुसार पालन करता है, राजासिक राजा वासना एवं विषयों में आसक्त होता है एवं तामसी राजा कर्त्तव्यहीन एवं नीति का उल्लंघन करने वाला होता है सात्विक राजा, श्रेष्ठ, राजसिक राजा मध्यम एवं तामसिक राजा निकृष्ट श्रेणी का होता है।

- **(3) राजा की प्रजा-सेवक सम्बन्धी धारणा** :- शुक्र के अनुसार, ब्रह्मा ने राजा को ऐसा प्रजा-सेवक बनाया है, जिसे वेतन के रूप में प्रजा से कर प्राप्त होता है, इसलिए राजा को प्रजा से कर ग्रहण करके सेवक की भांति प्रजा की रक्षा एवं सेवा करनी चाहिए।

- **(4) संविदा सम्बन्धी धारणा** :- मनु के विपरीत, शुक्र राजा को तब तक ही राजा मानते हैं, जब तक वह धर्मशील होता है। यदि वह अधर्मशील हो तो प्रजा को चाहिए कि ऐसे राजा को त्यागकर, श्रेष्ठ राजा की शरण में जाने का विचार बनाए, ताकि भयभीत होकर राजा धर्मशील बन जाए।

राजा के देवत्व पर विचार

जैसा कि उल्लेख किया गया है शुक्र ने राजा को आठ देवताओं के अंश से निर्मित बताया है। शुक्र ऐसे भारतीय विचारक हैं, जिन्होंने राजा के प्रत्यक्ष देव होने की धारणा का विरोध किया है। शुक्र ने न तो राजा को 'देव' स्वीकार किया है और न ही उसके दैवी अधिकार माने है, परन्तु उसके दायित्वों की दिव्यता का स्पष्टीकरण अवश्य ही किया हें। दायित्वों की दिव्यता के कारण स्वयं शासक भी अपनी इच्छा से इन दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता। राजधर्म का पालन करने से क्षुद्र राजा भी श्रेंष्ठ बन जाता है, जबकि इसके विपरीत आचरण करने से उत्तम राजा भी क्षुद्र बन जाता है।

राजा का वर्गीकरण

- **(१) गुण व कर्म के आधार पर** :- तीन प्रकार के राजा शुक्रनीति में माने गऐ है :

  1.सात्विक राजा 2. राजस राजा 3. तामस राजा

- **(२) सत्तासीन एवं दस्युराजा** :- जब किसी राजा को उसके शत्रु सत्ता से बाहर कर देते हैं तो ऐसा राजा 'दस्यु राजा' का जीवन व्यतीत करता है।

- **(३) वार्षिक आय के आधार पर वर्गीकरण** :- शुक्र ने राजाओं की वार्षिक आय के आधार पर आठ प्रकार के राजाओं का उल्लेख किया है -

  1. सामन्त
  2. माण्डलिक
  3. राजा
  4. महाराजा
  5. स्वराट
  6. सम्राट
  7. विराट

8. सार्वभौम।

शुक्र ने नैतिक आधार को भी वर्गीकरण में प्रमुखता देते हुऐ कहा है कि राजा की आय प्रजा को पीड़ा दिए बिना होनी चाहिए तथा यह केवल राजतन्त्र से सम्बन्धित वर्गीकरण ही है।

- **(४) अभिषेक के प्रसंग में दो प्रकार के राजा** :- प्राचीन भारत में राज्याभिषेक संस्कार का विशेष महत्व था और इसके द्वारा ही राजा सत्ता का वैध अधिकारी माना जाता था। शुक्र ने इस परम्परा के प्रतिकूल अनभिषिक्त राजा का भी उल्लेख किया है।[

- **(५) राजा के गुण एवं दुर्गुण** :- शुक्र ने राजा के लिऐ ऐसे व्यावहारिक व मानवीय गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक माना है, जिनके द्वारा व्यापक दायित्वों का उचित प्रकार से निर्वाह कर सके तथा सार्वजनिक प्ररशंसा का पात्र बना रहे। शुक्र का मत है कि राजा को सर्वप्रथम अपने ऊपर ही विजय पानी चाहिए। राजा के गुणों के अनुसार ही उसके सहायकों के गुण भी हो जाते है। अतः सदैव राजा को गुणवान होने का आदर्श ही प्रस्तुत करना चाहिए। राजा केवल राजकुल में उत्पन्न होने के कारण ही प्रजा का आदर प्राप्त नहीं करता अपितु उसके गुण ही उसे आदर प्रदान करते है।

  (६) राजा की दिनचर्या :- शुक्रनीति में भी मनुस्मृति और अर्थशास्त्र के समान ही राजा को यह परामर्श दिया गया है कि वह अपनी दिनचर्या का उचित विभाजन करके दिन के विशिष्ट कालखण्ड में निर्धारित कार्य करे। शुक्र नीति में राजा की 24 घण्टे की दिनचर्या को 30 मुहूर्तो में विभाजित किया गया है। शुक्र का एक मुहूर्त 48 मिनट के बराबर है। शुक्र ने राजा को परामर्श दिया कि कार्यों को नियत समय पर करने से बहुत सुख मिलता है।

- **उत्तराधिकार सिद्धान्त** :- शुक्र ने प्राचीन परम्परा का अनुकरण करते हुए उत्तराधिकार के बारे मे 4 सिद्धान्तों को स्वीकार किया है -

  1. पैतृक सिद्धान्त
  2. ज्येष्ठता सिद्धान्त
  3. शारीरिक परिपूर्णता सिद्धान्त
  4. योग्यता सिद्धान्त।

शुक्र ने यह प्रतिपादित किया है कि शासन का उत्तराधिकारी राजकुल में से ही लिया जाना चाहिए, किन्तु राजा के ज्येष्ठ पुत्र को स्वतः ही शासन का उत्तराधिकारी नहीं मान लेना चाहिए। राजा के जीवित रहते हुए ही उत्तराधिकार के प्रश्न को निश्चित करना अच्छा है। अनेक व्यक्तियों के स्थान पर एक व्यक्ति को ही उत्तराधिकारी निश्चित करना चाहिए। शुक्र ने उत्तराधिकार के प्रश्न को हल करने के लिऐ राज्य का विभाजन करने के विचार का दृढ़ता से निषेध किया है क्योकि राज्य विभाजित होने से शत्रु द्वारा नष्ट करने की आशंका रहती

है। उत्तराधिकार के दावेदारों में ऐसे मतभेद भी हो सकते हैं जो राज्य एवं राजकुल के लिऐ विनाश का कारण बन सकते हैं। अतः इन सभी के राजसी मान-सम्मान के जीवन का प्रबन्ध किया जाए, ताकि ये संतुष्ट रह सकें।

निरंकुश राजा पर नियंत्रण

शुक्रनीति में शासक को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई है, परन्तु शासक से इनका प्रयोग विधि एवं धर्म के अनुसार करने की अपेक्षा की गई है। शुक्र ने राजाओं को निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी बनाने से रोकने के लिऐ तीन उपाय सुझाए है -

- **(१) नैतिक उपाय** :- शुक्रनीति में राजा से नीति का पालन करने की अपेक्षा की गई है तथा उसके स्वेच्छाचारी व्यवहार का निषेध किया गया है। शासक को दण्ड की शक्ति के प्रयोग का अधिकार उसी स्थिति में प्राप्त है जबकि वह स्वयं अपने धर्म के पालन के प्रति निष्ठावान हो तथा उसका स्वयं का आचरण दोषरहित हो। शुक्र ने शासक से निजी व सार्वजनिक दोनों प्रकार के आचरणों में शुद्धता और मर्यादा की अपेक्षा करते हुए उसे परामर्श दिया है कि इस बात को समझकर कि यौवन, जीवन, धन व प्रभुत्व चिरस्थायी नहीं होते उसे धर्म में ही निरत रहना चाहिए। शुक्र का मत है कि यदि शासक में एक भी दुर्गुण हो तो जनता के मध्य उसकी छवि बिगड़ भी सकती है। शुक्र ने शासक को यह भी परामर्श दिया है कि वह अपनी प्रजा को वश में करने के लिए भेदभाव का नहीं अपितु साम व दान का प्रयोग करें। शुक्र ने शासक से परम्पराओं, प्रतिष्ठित सामाजिक मूल्यों आदि का नियन्त्रण मानने की अपेक्षा की है। शुक्रनीति सार द्वारा सुझाए गए नैतिक उपायों में राजा की शिक्षा, नीति व दर्शन के उपदेश, राजा के सहायकों एवं परामर्शदाताओं द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त पारलौकिक सुखों एवं दुखों की व्यवस्था, राजा के विभिन्न कर्तव्य, राजा की दिनचर्या आदि को शामिल किया जा सकता है।

- **(२) वैधानिक उपाय** :- शुक्र के अनुसार राजा का पद श्रेष्ठ अवश्य है, किन्तु यह विधि, नियम एवं कानून से अधिक श्रेष्ठ नहीं है। शुक्र के अनुसार राजा को केवल परम्परागत विधि (सदाचार एवं रूढ़ियाँ) में ही परिवर्तन करने का अधिकार है, किंतु यह परिवर्तन देश, काल, स्थिति को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए और इस कार्य को 'पंडित' नामक मन्त्री की सलाह के आधार पर ही किया जाना चाहिए, जो विधि निर्माण का विशेषज्ञ होता है। शुक्र द्वारा विधि के क्षेत्र में राजा की शक्तियों की जो सीमा बताई गई है, उनसे प्रतीत होता है कि राजा प्रायः विधि के क्षेत्र में निरंकुश नहीं हो पाता था। प्रशासनिक क्षेत्र में शासन की प्रकृतियों का उचित परामर्श राजा को नीतिभ्रष्ट होने से बचाने के लिए आवश्यक माना गया है। शुक्र ने राज्य के सुचारू संचालन के लिए मन्त्रियों आदि के परामर्श के प्रति शासक की निष्ठा की आवश्यकता को प्रतिपादित किया है, साथ ही परामर्श देने के लिए नियुक्त पदाधिकारियों से यह अपेक्षा की है कि वे राजा को सदैव उचित परामर्श दें। यहाँ तक कि आपातकाल में भी राजा को स्वतंत्र नहीं माना है। वह सम्बन्धित पक्षों की सहमति से ही कठोर निर्णय लेने में समर्थ होता है। न्यायायिक क्षेत्र में उदासीनता के व्यवहार को शासक के घोर नैतिक अपराध की संज्ञा दी है, तथा चेतावनी दी है कि ऐसा करने पर वह नरक में जाएगा। न्यायिक मुकदमों के निर्णयों के लिए एक

निश्चित एवं निष्पक्ष प्रक्रिया का उल्लेख किया है, जिसका राजा द्वारा पालन किया जाना है। शुक्र ने न्याय सभा के सदस्यों की योग्यता व न्याय साधनों का विस्तृत विवरण दिया है।

- **(३) विधानेत्तर उपाय** :- शुक्र ने जनता व जनमत के नियंत्रण को भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। शुक्र ने शासक को यह परामर्श दिया है कि प्रजा द्वारा की गई अपनी निन्दा को गम्भीरता से ग्रहण करे व अपने दुर्गुणों का निवारण कर शुक्रनीति में शासक को पदच्युत करने के प्रजा के अधिकार को स्पष्टतः मान्यता प्रदान की गई है तथा प्रजा का यह कर्तव्य माना गया है कि वह नीति एवं धर्म के विरूद्ध आचरण करने वाले राजा को निरन्तर भयभीत रखने का प्रयत्न करे तथा ऐसा न हो सकने पर उसे पदच्युत कर दे।

    - **(क) पुरोहित की मदद से सत्ता में परिवर्तन** :- यदि राजा गुण, नीति, सेना का शत्रु हो और अधार्मिक हो तो उसे राष्ट्र का विनाश करने वाला मान कर त्याग दिया जाना चाहिए अर्थात् उसे पद से हटा देना चाहिए। पुरोहित को अन्य प्रकृतियों (मन्त्रि परिषद् के सदस्य) की सहमति से उसे पदच्युत राजा के स्थान पर उसी राजकुल के किसी गुणवान पुरूष को राजपद पर नियुक्त किया जाना चाहिए।

    - **(ख) धर्मशील शत्रु राजा की मदद से सत्ता में सुधार** :- शुक्र का मत है कि नीतिभ्रष्ट राजा को पुनः नीति-मार्ग पर लाने का कार्य किसी अन्य धर्मशील व शक्तिशाली राजा द्वारा ही किया जा सकता है, जैसे-दलदल में फंसे हाथी को किसी अन्य हाथी द्वारा ही निकाला जा सकता है। शुक्र ने राजा की स्वेच्छाचारिता से बचने के लिए प्रजा के इस विधानेतर प्रयत्न का समर्थन किया है कि वह अपने राजा के नियन्त्रण के लिए उसके धर्मशील व शक्तिशाली शत्रु राजा से सांठ-गांठ कर सकती है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि शुक्र ने अधर्मशील, स्वेच्छाचारी तथा राष्ट्र का विनाश करने वाले राजा के विरोध को उचित माना है और उसके नियन्त्रण के लिए विभिन्न नैतिक उपायों व वैधानिक उपायों के साथ ही विधानेतर उपायों पर भी विचार दिए हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी दुष्ट राजा को साक्षात् कलियुग मानते हुए, उसके वध को उचित माना है। यह उल्लेखनीय है कि शुक्र ने दुष्ट व स्वेच्छाचारी राजा के नियन्त्रण अथवा उसकी पद-मुक्ति की व्यवस्था स्वीकारी है और उसके वध का समर्थन नहीं किया है।

मन्त्रिपरिषद

शुक्रनीति सार के अनुसार सभी विद्याओं में अति कुशल राजा के लिए भी राजकार्य जैसे अतिकठिन कार्य को अकेले ही करना असम्भव होता है। अतः राजा को अपने सहायकों से परामर्श करना चाहिए। शुक्र के अनुसार जो राजा मन्त्री के मुंह से कही गयी हित-अहित की बातों पर गौर नहीं करता है वह राजा होकर भी वास्तव में डाकू के समान केवल प्रजा के धन को लूटने वाला ही होता है।

मंन्त्रिपरिषद का संगठन

शुक्र ने मंन्त्रि परिषद के सदस्यों के लिए 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग किया है।

- **(क) सदस्य संख्या** :- जहां अन्य आचार्यो ने यह संख्या 8 स्वीकारी है। शुक्र ने इनकी सहायता के लिए दस 'सहायकों' की भी व्यवस्था की है। जिन्हें अल्टेकर ने 'उपमंन्त्री' कहा है।

- **(ख) विभिन्न विभाग, मन्त्रियों के पद तथा उनका वरीयताक्रम** :- शुक्रनीतिसार के सदस्यों के पद, विभाग एवं वरीयता क्रम को निम्नलिखित प्रकार से प्रकट किया गया है -

    1. पुरोधा (पुरोहित)
    2. प्रतिनिधि
    3. प्रधान
    4. सचिव
    5. मन्त्री
    6. प्राड्विवाक
    7. पण्डित
    8. सुमंत्र
    9 अमात्य
    10. दूत

- **(ग) वेतन** :- शुक्र ने इस वेतन सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि पुरोधा से आरम्भ करके पूर्व पद का वेतन आगामी पद से 1/10 ज्यादा होना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि शुक्र ने वेतन के बारे में पद एवं विभागों के वरीयता क्रम को महत्व प्रदान किया है।

- **(द) कार्यकाल तथा विभाग परिवर्तन** :- किसी भी पद पर किसी भी मन्त्री को स्थायी रूप से नियुक्त नहीं करना चाहिए, इनकी योग्यता की निरन्तर जांच करते हुऐ, कार्यकुशलता के अनुसार पदों में परिवर्तन करते रहना चाहिए। यदि किसी विभाग का प्रधान अधिकारी अयोग्य सिद्ध हो तो उसके स्थान पर उसके किसी योग्य सहायक को नियुक्त किया जाना चाहिए।

मन्त्रिपरिषद के सदस्यों की योग्यता एवं कार्य

- **(क) सदस्यों की समान योग्यता** :- शुक्र ने नियुक्ति सम्बंधी विवरण में अग्रलिखित छः प्रकार की योग्यता पर बल दिया है -

1. आनुवांशिकता
2. नैतिकता
3. शारीरिक क्षमता
4. बौद्धिक क्षमता
5. राजभक्ति
6. नीतिनिपुणता

अल्टेकर के अनुसार, "शुक्र का मत है कि केवल भोजन व विवाह के अवसरों पर ही जाति की पूछताछ की जानी चाहिए, मन्त्रिपरिषद में नियुक्ति के समय नहीं। शुक्र को शूद्र के अधीन सैन्य विभाग रखने में कोई आपत्ति नहीं है, यदि वह योग्य एवं राजभक्त हो।" वास्तव में शुक्र का मत प्राचीन भारत की उदार परम्परा के अनुरूप है। शान्तिपर्व ने मन्त्रिपरिषद में प्रथम तीन वर्णों के अलावा तीन योग्य शूद्रों की नियुक्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है।

- **(ख) सदस्यों की विशिष्ट योग्यता एवं कार्य** :- शुक्र की मन्त्रि परिषद में सर्वप्रथम स्थान **पुरोधा** का है। उसे मन्त्र, कर्मकाण्ड, त्रयी, छह वेदांग, धनुर्वेद, नीतिविद्या आदि का ज्ञाता होना चाहिए। उसे काम, क्रोध, लोभ मोह से रहित, इन्द्रियजयी और धार्मिक जीवन में रत होना चाहिए। **प्रतिनिधि** को इतना योग्य होना चाहिऐ कि वह देश, काल व स्थान के सन्दर्भ में करने योग्य एवं न करने योग्य कार्यो की पहचान रखता हो। मन्त्रिपरिषद का तीसरा सदस्य **प्रधान** है, जो शासन के सभी कार्यों का सामान्य निरीक्षण करने की योग्यता रखता है। चौथा सदस्य **सचिव** है, जो अपने कार्यों की दृष्टि से युद्ध मन्त्री है। वह सेना एवं इसके कार्यों का समस्त ज्ञान रखता है। पाँचवाँ सदस्य **मन्त्री** का है, जिसे आधुनिक दृष्टि से विदेश मन्त्री या परराष्ट्र मन्त्री कह सकते है। छठा सदस्य **प्राड्विवाक** है, जो प्रधान न्यायाधीश है एवं न्याय विभाग का प्रमुख राजनीतिक अधिकारी भी है। उसे शास्त्रोक्त एवं लोक प्रचलित आचार का ज्ञाता होना चाहिए। सातवां सदस्य **पण्डित**, धर्म के तत्व का ज्ञाता होना चाहिए। आठवें सदस्य सुमन्त्र शुक्र का वित्त मन्त्री या कोषाध्यक्ष कहा जा सकता है, जिसे आय-व्यय की सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। नवां सदस्य **अमात्य** देश तथा आलेखों का ज्ञाता होना चाहिए। वह राज्य में स्थित नगरों, ग्रामों, जंगलों की भूमि की माप का हिसाब रखता है और इनसे होने वाली आय का भी विवरण रखता है। वरीयता क्रम में अन्तिम स्थान **दूत** का है। वह षाड्गुण्यमन्त्र का ज्ञाता, अच्छा वक्ता, निर्भीक, देश व काल की स्थिति को समझने वाला होना चाहिए।

मन्त्रिपरिषद की कार्य-प्रणाली

के. पी. जायसवाल के अनुसार प्राचीन भारतीय राजनीतिक ग्रंथों मे केवल शुक्रनीतिसार में ही मंन्त्रिपरिषद की कार्यप्रणाली पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। बी. के. सरकार के अनुसार इस ग्रन्थ में मन्त्रि परिषद की कार्य प्रणाली के बारे में अग्रलिखित तथ्यों को स्पष्ट किया है -

(1) मन्त्रिपरिषद का सदस्य एवं सहायक मिलकर अपने विभाग से सम्बन्धित किसी विषय पर एक लेख तैयार करते है।

(2) इस लेख पर सर्वप्रथम राजा की टिप्पणी द्वारा इसके दोषों को समाप्त किया जाता है।

(3) इसके बाद सभी मन्त्रियों की सलाह ली जाती है, जिससे सभी विभागों में ताल-मेल एवं सहयोग बना रहता है।

(4) इस लेख पर सभी मन्त्रियों द्वारा अपनी मुद्रा सहित हस्ताक्षर किए जाते है।

(5) अन्त में पुनः राजा अवलोकन करता है और अपना अन्तिम निर्णय देता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया राज्य के लिए लाभदायक है क्योंकि राजा लिखित रूप में सबकी राय भी जान लेता है एवं अन्तिम निर्णय का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखता है।

राष्ट्र का प्रशासन एवं कार्मिक व्यवस्था

शुक्र ने दो प्रकार के प्रशासन का उल्लेख किया है- केन्द्रीय प्रशासन एवं स्थानीय प्रशासन। केन्द्रीय प्रशासन में राजभृत्यों के महत्व को बताते हुए शुक्र ने राजा को परामर्श दिया है कि वह राज्य की उन्नति के लिए अनेक ज्ञानवान एवं गुणी सहायकों की नियुक्ति करे। शुक्र ने सात प्रकार के सेवकों का उल्लेख किया है और सभी वर्गों के अधिकारियों, सहायकों एवं सेवकों की नियुक्ति सम्बन्धी योग्यता पर विस्तार से प्रकाश डाला है। शुक्र ने स्थानीय प्रशासन के संगठन का भी उल्लेख किया है, जिसमें अग्रलिखित 6 अधिकारियों का उल्लेख है -

1. साहसाधिपति
2. ग्राम नेता
3. भागहार

4. लेखक
5. शुल्क ग्राहक
6. प्रतिहारी।

शासकीय अधिकारियों पर नियंन्त्रण

कुशल प्रशासन हेतु अनिवार्य है कि राजा अधिकारियों के कार्यों पर कड़ी नजर रखे। शुक्रनीति में कहा गया है कि यदि सौ प्रजाजन किसी अधिकारी के विरूद्ध आवेदन पत्र दे दें, तो उस अधिकारी को पदच्युत कर देना चाहिए। शुक्र ने परामर्श दिया है कि राजा अन्याय करने वाले अधिकारियों से उनकी शक्तियाँ छीन ले। नियन्त्रण के लिए यह भी अनिवार्य है कि एक पद पर एक व्यक्ति अधिक समय तक न रहे। किसी व्यक्ति की पद पर नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर करनी चाहिए।

प्रशासनिक संगठन

शुक्रनीति में प्रशासन के 20 विभागों का उल्लेख किया गया है- गज, अश्व, स्वर्ण, रजत विभाग आदि। इन विभागों के अध्यक्ष पद को सामान्य रूप से कर्म सचिव कहा है, किन्तु इसके साथ ही अध्यक्ष पद के लिऐ अध्यक्ष, पति या अधिपति की संज्ञा का प्रयोग किया है। शुक्रनीति में प्रतिपादित प्रशासनिक संगठन बहुस्तरीय है। प्रशासन के केन्द्रीय स्तर पर संगठित विभागों के अतिरिक्त, शुक्र ने स्थानीय, ग्रामीण और नगरीय प्रशासन की संगठनात्मक संरचना पर प्रकाश डाला है। शुक्र का मत है कि प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक नगर में साहसाध्यक्ष (पुलिस अधीक्षक के समकक्ष पद) ग्राम का अध्यक्ष भागहार (प्रजा से कर वसूलने हेतु उत्तरदायी) की नियुक्ति की जानी चाहिए। प्रशासन के समस्त स्तरों पर नियुक्त कार्मिकों की व्यावसायिक व तकनीकी योग्यताओं का शुक्र नीति में विस्तार से उल्लेख किया गया है।

प्रशासन की कार्यालय पद्धति

शुक्र ने प्रशासन की कार्यालय पद्धति में लिखित आदेश को अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार, अधिकारी या सहायकों को बिना लिखित राजाज्ञा के कोई कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि राजा की राजमुद्रा व हस्ताक्षर युक्त लिखित आदेश ही वास्तविक राजा होता है, व्यक्ति राजा नहीं होता है। शुक्र ने राजा के लिखित आदेश को स्मृति पत्र (फाइल) के रूप में सुरक्षित रखने की प्रणाली को स्वीकार किया गया है। इसके साथ ही उन्होंने प्रशासन

में दैनिक, मासिक, वार्षिक तथा बहुवर्षीय रिपोर्ट तैयार करने पर भी बल दिया गया है। प्रशासन के कुशल संचालन के लिये शुक्र ने सूचनाओं की प्रतिदिन प्राप्ति पर जोर दिया है। उनका मत है कि राजा को प्रतिदिन 100 कोस दूर तक के प्रदेशों की सूचनाऐं प्राप्त होनी चाहिए। शुक्र ने राजकीय कार्यालयों की सुरक्षा के लिए पहरेदारों व रक्षकों की व्यवस्था को स्वीकार किया है।

प्रशासन में कार्मिक व्यवस्था

कार्मिक व्यवस्था के विवेचन की दृष्टि से शुक्रनीति को विलक्षण ग्रन्थ माना जा सकता है, क्योकि कार्मिक व्यवस्था के विभिन्न पक्षों का जैसा सटीक, व्यवस्थित व पूर्ण चित्रण इसमें उपलब्ध है, वह कहीं नहीं मिलता है।

(1) राज्य कर्मचारियों के लिऐ आचार संहिता : समस्त राजकर्मचारियों से आचरण के सामान्य नियमों के पालन की अपेक्षा की गई है। इन नियमों या आचार संहिता का पालन करने वाले कर्मचारियों को ग्रन्थ में श्रेष्ठ कार्मिक बताया गया है। शुक्र के अनुसार, भृत्य को स्वामी के प्रति तथा अपने सेवा कार्य के प्रति पूरी तरह से समर्पित होकर कार्य करना चाहिए। उसे शिष्टतापूर्वक राजा को सद्कार्य की प्रेरणा देनी चाहिए तथा कभी भी मात्र चाटुकारिता नहीं करनी चाहिए। कर्मचारियों को कभी भी प्रजा से झूठे वादे नहीं करने चाहिए। अनुचित कार्यों जैसे- रिश्वत, जुआ, क्रोध, दुश्चरित्रता आदि को त्याग देना चाहिए। उपर्युक्त गुणों के विपरीत कार्य करने वालों को शुक्र ने निकृष्ट माना है।

(2) वेतन, वेतनमान व वेतनवृद्धि : वेतन भुगतान के सिद्धान्त में कार्य व काल दोनों को ही आधार बनाया गया है अर्थात् एक निश्चित काल में किए गये कार्य की मात्रा देखकर ही भृत्ति दी जाती है। शुक्र ने राजा को यह परामर्श दिया है कि वह वेतन में कटौती नहीं करे और सदैव नियत समय पर ही वेतन दे। शुक्रनीति में स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है कि कार्मिक का न्यूनतम वेतन इतना होना चाहिए कि उस पर आश्रित व्यक्तियों का सरलता से भरण-पोषण हो सक। वेतनमानों को श्रेष्ठ, मध्यम, सम व हीन में विभाजित किया गया है। शुक्र ने राजा को चेतावनी दी है कि अत्यन्त कम वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारी शासन से असंतुष्ट हो जाते है और राजकीय कार्यो की अपेक्षा अन्य कार्यों में रूचि लेने लगते है। अतः जैसे-जैसे भृत्य की योग्यता में वृद्धि हो, वैसे-वैसे उसके वेतन में भी वृद्धि होनी चाहिए, क्योंकि इससे अन्त में स्वयं राजा का हित होता है।

(3) सेवा अवधि, पदोन्नति एवं पद अवनति : सामान्य स्थिति में एक कर्मचारी की सेवा अवधि- 40 वर्ष स्वीकार की है, किन्तु इसके साथ ही भृत्यों की सदैव परीक्षा होती रहनी चाहिए और अवगुण उत्पन्न हो जाने पर भृत्य को पद मुक्त कर देना चाहिए। शुक्रनीति में कर्मचारियों की समयबद्ध पदोन्नति के बारे में स्पष्ट प्रावधान किया गया है, जब कोई कार्मिक अपने अनुभव के आधार पर अपने पद से श्रेष्ठ होता जाए तो उसे उत्तरोतर श्रेष्ठ पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि कोई प्रधान सेवक आलस्य आदि के कारण अपने दायित्वों की उपेक्षा करता है तो उसे अप्रधान सेवक बना देना चाहिए।

(4) शुक्र ने भृत्यों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की है।

(5) पेंशन, क्षतिपूर्ति, भविष्य निधि व बोनस की व्यवस्था : राजसेवा में 40 वर्ष पूरे करने के उपरांत, सेवानिवृत्ति के बाद पेन्शन रूप में पैसा आजीवन दिया जाना चाहिए। केवल पेंशन ही नहीं पारिवारिक पेंशन की व्यवस्था भी है। राज कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि की योजना को भी स्वीकार किया हैं। राजा को कार्मिक के वेतन की कुल राशि का 1/6 या 1/4 भाग काटकर अपने यहां जमा कर लेना चाहिए और दो या तीन वर्ष बाद, उस जमा राशि के आधे या पूरे भाग का भुगतान कार्मिक को कर देना चाहिए।

(6) विश्राम एवं अवकाश के नियम : नियमित कार्मिकों के प्रतिदिन 12 घण्टे राजकार्य की व्यवस्था है। कर्मचारियों को उपयुक्त अन्तराल पर तथा विशिष्ट परिस्थितियों में कार्य से अवकाश प्रदान किये जाने की आवश्यकता व्यक्त की गई है एवं विस्तृत नियमों का प्रतिपादन किया गया है। उत्सव आदि के दिन कोई कार्य कर्मचारियों से नहीं कराया जायेगा। यदि कोई अधिक आवश्यक कार्य हो तो उत्सव वाले दिन भी कराने की व्यवस्था की गई है, परन्तु श्राद्ध के दिन किसी भी प्रकार के कार्य का स्पष्ट निषेध किया गया है। कार्मिकों को प्रतिदिन निश्चित अन्तराल पर अवकाश देने की व्यवस्था भी की गई है। कर्मचारियों के अस्वस्थ हो जाने पर उन्हें 'सवेतन' व अर्द्धवेतन अवकाश की व्यवस्था की गई है। प्रतिवर्ष 15 दिन के सवेतन अवकाश के साथ स्वास्थ्य अवकाश की भी व्यवस्था की है। किन्तु जब कोई योग्य भृत्य बीमार हो जाए, उसकी बीमारी की अवधि की उपेक्षा करके उसे सदैव आधा वेतन अवश्य ही दिया जाना चाहिए। इस प्रकार शुक्रनीति प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन का ऐसा ग्रन्थ है। जिसमें कार्मिक व्यवस्था का इतना विस्तृत व व्यापक विवरण दिया गया है, तथा जो कर्मचारियों के हितों पर आधारित है।

कर नीति

प्राचीन भारतीय परम्परा का अनुकरण करते हुए शुक्र ने राजा के कर लगाने के अधिकार पर दो नियन्त्रण लगाए है|

(1) राजा ब्रह्मा द्वारा नियुक्त ऐसा प्रजा सेवक है, जो प्रजा से कर के रूप में अपना वेतन प्राप्त करता है, अतः प्रजा पालन के कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए ही राजा को कर लगाने का अधिकार होता है।

(2) राजा को कर निर्धारण के लिय स्मृति के नियमों का पालन करना चाहिए, मनमाने कर निर्धारण या वसूलने का अधिकार राजा को नहीं है।

राज्य के स्रोत के रूप में कर का स्वरूप ऐसा होना चाहिए की पेड़ से फल तोड़ लिया जाए किंतु पेड़, पत्तियों,टहनियों को नुकसान ना पहुंचे| राजा को माली के रूप में फल का उपयोग कर बीज को पुनः रोपित कर देना चाहिए| कर वसूलते हुए अधिकारियों को इस तरह वसूलना चाहिए जैसे मधुमक्खी फूल से शहद ले लेती है और फूलों को कोई कष्ट भी नहीं होता|

कर व्यवस्था

शुक्रनीति सार में दो प्रकार की कर प्रणाली दिखाई देती है -

(1) स्थानीय कर प्रणाली

(2) राष्ट्रीय कर प्रणाली।

स्थानीय कर प्रणाली

शुक्राचार्य ने स्थानीय आवश्कताओं की पूर्ति के लिए स्थानीय कराधान के सिद्धान्त को स्वीकारा है जैसे-नगर के गृहों की रक्षक पुलिस का भरण-पोषण गृहस्थों से प्राप्त वेतन से किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय कर प्रणाली

स्थानीय के अतिरिक्त अन्य सभी कर इसमें शामिल है। इसमें दो कालों के प्रसंग में कर नीति को स्वीकार किया गया है : सामान्यकालीन कर नीति व संकटकालीन कर नीति।

सामान्यकालीन कर नीति :- सामान्य काल में शुक्र ने प्रजा की आर्थिक क्षमता को ध्यान में रखकर कर लगाने का निर्देश दिया है। उनका मत है कि शुल्क को इतनी मात्रा में लिया जाना चाहिए कि कर दाता की मूल पूंजी का अन्त न हो। राजा को भाग के संग्रह में माली की प्रवृति का अनुकरण करना चाहिए। कर इस प्रकार लिया जाए कि राजा एवं प्रजा दोनों के हित में हो, अन्यायपूर्वक एवं अधर्म युक्त कर नहीं लिया जाना चाहिए, ऐसा करने पर राजा नष्ट हो जाता है। जो राजा अपने कोष में वृद्धि चाहता है, उसे प्रजा पालन का दायित्व अवश्य ही पूरा करना चाहिए।

संकटकालीन कर नीति :- ऐसे काल में राजा को कर की मात्रा में वृद्धि करने तथा सामान्यतः करमुक्त मदो पर भी कर लगाने का अधिकार होता है। इसीलिए शुक्र ने सामान्यकाल में तीर्थस्थान व देवस्थान को करमुक्त माना है, किन्तु संकटकाल में नहीं।

कर मुक्ति

शुक्र ने करारोपण के समान कर-मुक्ति की व्यवस्था को भी प्रजा के आर्थिक विकास की दृष्टि से स्वीकार किया है। घरेलू उपभोग हेतु खरीदे जाने वाले धान्य एवं वस्त्र, कुटुम्ब-पालन हेतु दुधारू पशु को पशु कर से मुक्ति, व्यापार में हानि उठाने वाला सौदागर, तीर्थ स्नान व देव स्थान (सामान्यकाल में) नए उद्योग लगाने या नए कृषि कार्य में जब तक दुगुना लाभ-प्राप्त न हो जाए इस नीति से शुक्र की लोक कल्याणकारी नीति का ज्ञान प्राप्त होता है।

विभिन्न प्रकार के कर

भाग कर - यह खेती की उपज पर लगाया जाने वाला कर है। भाग की वसूली के लिए 3 प्रमुख आधारों का उल्लेख किया गया है :

1. कृषि भूमि का क्षेत्रफल
2. भूमि की प्रकृति
3. कृषि उपज पर किसान के लिए लाभ की मात्रा।

शुक्र के अनुसार, किसी धनी की मदद से, **ग्रामपाल** नामक भृत्य की मदद से या **मात्रहार** नामक अधिकारी की मदद से भाग वसूल कर सकता है। शुक्र ने भारतीय परम्परा के अनुसार अनाज या नकद के रूप में कर लेने का उल्लेख किया है। जब किसान भाग जमा कराए तो उसे राजकीय मुद्रायुक्त भागपत्र (रसीद) दिया जाना चाहिए।

शुल्क कर - शुक्र के अनुसार राजा को उस क्रेता या विक्रेता से शुल्क प्राप्त करना चाहिए, जो आर्थिक लेन देन में लाभ की स्थिति में हो शुल्क की वसूली में छल कपट नहीं किया जाना चाहिए।

आकर कर - प्राचीन भारत में खनिज उत्पादन पर लगाए जाने वाले कर को आकर कर कहा जाता था और इसे वस्तु के रूप में वसूला जाता था। शुक्र के अनुसार राजा उत्पादन पर होने वाले व्यय को काटकर, खान से उत्पन्न होने वाली धातुओं-स्वर्ण, रजत, तांबा आदि पर अलग-अलग दर से यह कर प्राप्त करता था। जितनी महंगी धातु, उतना ही अधिक आकर कर था।

तृण काष्ठादि पर कर - ईंधन के लिए जंगल से लकड़ी एकत्रित करने वालों पर, यह कर वस्तु के रूप में लिया जाता था।

पशु कर - प्राचीन भारत में पशु पालन प्रमुख व्यवसाय था, अतः इस पर कर लगाने की परम्परा भी थी। बकरी, भेड़, गाय, भैंस, आदि सभी पर कर लगाया जाता था। दर अलग-अलग थी।

ब्याज कर - राजा को साहूकार की ब्याज का 32वां हिस्सा कर के रूप मे प्राप्त करने का अधिकार था।

आवासीय एवं व्यावसायिक भूमि पर कर - इस भूमि पर कर की वही दर होनी चाहिए जो कृषि भूमि हेतु तय हो।

यात्री कर - मनु ने जलमार्ग पर, जबकि शुक्र ने थलमार्ग पर कर का उल्लेख किया है। सड़को की रक्षा, मरम्मत तथा सफाई के लिए यात्रियों से कर लेने की व्यवस्था की गई है।

हस्तशिल्पियों व कलाकारों पर कर - शुक्र के अनुसार कारीगरों व शिल्पियों से एक पक्ष में एक दिन (15 दिन में एक बार) निःशुल्क कार्य कराया जाना चाहिए।

कर व्यवस्था के सम्बन्ध में शुक्रनीति में प्रतिपादित किये गए निषेधात्मक एवं सकारात्मक नियमों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुक्रनीति में राज्य की कर व्यवस्था को 'लोक कल्याणकारी' राज्य की अपेक्षाओं के अनुरूप स्वरुप प्रदान किया गया है।

न्याय प्रणाली

शुक्र ने न्याय कार्य के महत्व को स्वीकार करते हुए राजा के 8 प्रधान कर्त्तव्यों में **दुष्ट-निग्रह** को शामिल किया है। यह न्यायिक प्रक्रिया प्रजा को धर्म पालन में मदद करती है। राजा का कर्त्तव्य है कि वह मुकदमों का उचित प्रकार से निर्णय करे और इस बारे में सत्तापूर्वक प्रजाजन से अपने निर्णय का पालन करवाए। शुक्र ने न्याय के अवधारणात्क पक्ष की उतनी विस्तृत व्याख्या नहीं की है, जैसी कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मनुस्मृति में

उपलब्ध है। न्याय के संस्थागत और प्रक्रियात्मक पक्ष का शुक्र ने विस्तृत विवरण दिया है। न्यायपालिका के संगठन, न्यायिक प्रक्रिया तथा मुकदमों से सम्बन्धित पक्षों के अधिकारों एवं दायित्वों का विस्तार से विवेचन किया है।

न्यायालयों का संगठन एवं क्षेत्राधिकार

शुक्र द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत राजा एवं सभा का उल्लेख किया गया है तथा विशेष प्रसंगों में सहायता करने के लिए 'जूरी' का भी उल्लेख किया गया है। शुक्रनीति में राजा को सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था का (स्थानीय एवं साधारण मुकदमों के अतिरिक्त) प्रमुख निर्णायक अथवा सर्वोच्च अधिकारी माना गया है, किन्तु यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राजा न्यायपालिका का केवल औपचारिक अध्यक्ष है। शुक्र ने राजा से शास्त्रों के अनुरूप न्यायिक कार्यों को भली भांति देखने की अपेक्षा की गई है। राजा द्वारा अकेले ही सभासदों की सहमति लिए बिना, निर्णय लेने के गम्भीर दुष्परिणामों का भी उल्लेख किया है।

विभिन्न न्यायिक निकाय एवं न्यायिक प्राधिकारी

सभा - शुक्र ने राज्य के केन्द्रीय न्यायालय को **सभा** या **न्यायसभा** कहा है। सभा ऐसा स्थान है जहाँ व्यक्ति के लौकिक आचरण एवं हितों की जांच स्मृति के कानून के अनुसार की जाती है। शुक्र ने ऐसे दस साधनों का उल्लेख किया है, जिनकी मदद से सभा न्याय-कार्य को भली भांति में समर्थ होती है। ये दस साधन निम्नलिखित हैं -

1. राजा
2. सभ्य
3. स्मृति
4. लेखपाल
5. लेखक
6. स्वर्ण
7. अग्नि
8. जल
9. अधिकारी
10. राजपुरूष

शुक्र के अनुसार, सभा में प्रथम स्थान राजा का होता है, जो सभा का सभापतित्व करता है। राजा सभा में अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर सकता है, जिसे शुक्र ने **प्राड्विवाक**कहा है, जो सभा के अलावा मन्त्रिपरिषद का भी सदस्य होता है। शुक्र ने ब्राह्मण वर्ण को प्राथमिकता

देने के साथ ही सभी जातियों से सभा के सदस्य बनाना स्वीकार किया है। अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने कहा है, " शुक्र ने सभासदों के सम्बन्ध में एक विशेष सिद्धान्त प्रदान किया है। जिन लोगों का विवाद हो उन्ही के व्यवसाय से सभासद बनाए जाए, जैसे- किसानों के विवाद में किसान क्योंकि वही अपने व्यवसाय के नियमों के विषय में अधिक अच्छी तरह जानते हैं।" शुक्रनीति का यह विवरण उसकी न्याय व्यवस्था को अधिक उदार तर्कसंगत एवं यथार्थवादी बनाता है।

मुख्य न्यायाधीश : राजा के बाद यही सर्वोच्च न्यायिक पदाधिकारी माना गया है। इस पद पर शुक्र के अनुसार ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिए। जिसका विधि-शास्त्र का ज्ञान अत्यन्त व्यापक व विशेष हो तथा जिसकी निष्पक्षता व निष्ठा संदेह से परे हो।

न्यायालय का कार्मिक वर्ग व साधन : न्यायालय को समुचित संख्या में कर्मचारी व साधन उपलब्ध होने चाहिए अन्यथा न्यायालय अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं कर सकते। अतः शुक्र का मत है कि वही न्यायसभा पवित्र होती है, जिसमें मुकदमें के निर्णय के लिए आवश्यक समस्त साधन उपलब्ध हो।

राजा एवं न्यायाधीशों के लिए आचार संहिता

शुक्रनीति में न्यायाधीशों के मनमाने व्यवहार का निषेध किया गया है। उनके लिए कुछ नियमों की व्यवस्था की गई है। राजा को न्याय करने के अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन करना चाहिए तथा न्याय करते हुए विभिन्न जातियों, श्रेणियों और कुलों की परम्पराओं को मानते हुए निर्णय करना चाहिए एवं धर्म का पालन करना चाहिए। सभासदों को सभा में सत्य अवश्य कहना चाहिए। न्यायिक प्रक्रिया के समय राजा या न्यायाधीश को वादी के प्रति सम्मानपूर्वक आचरण करना चाहिए।

न्यायिक प्रक्रिया

व्यवहार : सरल शब्दों में व्यवहार का अर्थ है- 'न्यायालय में चलने वाले मुकदमे की न्यायिक प्रक्रिया'। इस न्यायिक प्रक्रिया द्वारा ही यह मालूम होता है कि कौन व्यक्ति अपराधी है और कौन निरपराधी।

व्यवहार के चरण : शुक्र ने मुकदमे की न्यायिक प्रक्रिया के चार चरण स्वीकार किए है।

(1) पूर्व पक्ष (2) प्रतिपक्ष (3) क्रिया (4) निर्णय

किसी भी मुकदमे की शुरूआत पूर्वपक्ष के लिखित या मौखिक बयान से होती है कि मुकदमा बनता है या नहीं। इसके बाद दूसरा चरण प्रतिपक्ष प्रारंभ होता है। अब न्यायालय वादी एवं प्रतिवादी दोनों से ही प्रश्न एवं प्रतिप्रश्न करता है। यदि न्यायालय यह अनुभव करता है कि वास्तव में कानून की दृष्टि से कोई मुकदमा बनता है, तो मुकदमा अपने तृतीय चरण अर्थात् क्रियापद में प्रवेश करता है। अन्यथा उसे द्वितीय पाद में समाप्त हो जाता है। क्रिया पाद के अन्तर्गत मुकदमे में प्रस्तुत विभिन्न प्रमाणों की कड़ी जांच की जाती है और मुकदमें में निहित सत्य व असत्य की जानकारी प्राप्त की जाती है। शुक्र ने सभी प्रमाणों के दो मूल प्रकार बताए है -

(1) मनुष्य प्रमाण (2) दैवी प्रमाण।

शुक्र ने दैवी प्रमाण को मानुष प्रमाण से कम महत्वपूर्ण माना है और इसलिऐ किसी भी प्रकार के मानुष प्रमाण के अभाव में देवी प्रमाण को उचित बताया है। न्यायिक प्रक्रिया का चौथा और अंतिम चरण निर्णय पद है। शुक्र ने निर्णय के निम्न सात आधार बताए है -

(1) प्रमाण (2) तर्कसिद्ध (3) अनुमान (4) सदाचार

(5) शपथ (6) राजाज्ञा (7) वादी की सहमति

शुक्र के अनुसार निर्णय की घोषणा के साथ ही विजेता पक्ष को **जयपत्र** दिया जाना चाहिए। इसे एक कानूनी दस्तावेज के रूप में भी मान्यता प्रदान की है। न्यायालय में वादी एवं प्रतिवादी दोनों को ही उपस्थित होना चाहिए। शुक्र ने अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत नई व्यवस्थाओं जैसे - पुनर्विचार सम्मान, जमानत और नियोगी (वकील) का भी उल्लेख किया है। शुक्र के अनुसार नियोगी को कानून का ज्ञान होना चाहिए एवं उसे नियमानुसार ही शुल्क लेना चाहिए।

अपराध

शुक्र ने अपराध के दस प्रकारों का उल्लेख किया है- इनमें राजाज्ञा का उल्लंघन, स्त्री की हत्या, चोरी करना आदि सम्मिलित है। वस्तुतः ये 10 अपराध राज्य, समाज, नैतिकता एवं धर्म के विरूद्ध अपराध है। शुक्र ने दण्डनीय अपराधों में 50 प्रकार के छलों का उल्लेख किया है। शुक्र ने इन्हें राज्य के प्रति किए गये अपराध माना है।

अपराधों का वर्गीकरण

शुक्र ने सभी प्रकार के अपराधों को चार मूल वर्गो में बांटा है -

(1) कायिक (2) वाचिक (3) मानसिक (4) सांसारिक।

कायिक अपराध शरीर से, वाचिक अपराध वाणी से, मानसिक अपराध मन से एवं सांसारिक अपराध किसी के साथ मिलकर या सहयोग से किया जाता है। शुक्र का मत है कि प्रत्येक अपराध की गुरूता एवं लघुता को जानकर ही अपराधी को दण्डित किया जाना चाहिए। शुक्रनीति में अपराधों की श्रेणियों का विस्तृत वर्गीकरण किया गया है, जो अपराधों के विषय में शुक्रनीति के व्यवस्थित, व्यावहारिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। शुक्रनीति में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, व प्रशासनिक समस्त प्रकार के अपराधों को महत्व प्रदान करते हुए उनके प्रतिकार की अपेक्षा की गई है। शुक्रनीति में सामान्यतः प्राणदण्ड न देने का प्रावधान किया गया है तथा केवल राजद्रोह जैसे गम्भीर अपराध के लिए वध का दण्ड प्रदान किए जाने के औचित्य का प्रतिपादन किया गया है।

दण्ड का अर्थ एवं महत्व

प्राचीन भारतीय परम्परा में 'दण्ड' शब्द के अनेक अर्थ है। यहां शुक्र ने दण्ड के दो अर्थ किए है-

(1) राजा की प्रमुख शक्ति

(2) राजा

यद्यपि अन्यत्र शुक्र ने दण्ड का अर्थ सेना, युद्ध एवं न्याय व्यवस्था को भी स्वीकार किया है, वास्तव में दण्ड जनता को बुरे आचरण से मुक्ति दिलाता है। राजा की दण्डयुक्त नीति सभी कार्यो की सिद्धि कराती है और दण्ड धर्मों का परम रक्षक है।

दण्ड के प्रकार

शुक्र ने मनु व याज्ञवल्क्य के समान ही न्यायिक प्रशासन या अपराध उन्मूलन के सन्दर्भ में दण्ड के अग्रलिखित चार प्रकार स्वीकार किए है -

- (1) वाक्दण्ड

- (2) धिक् दण्ड
- (3) अर्थ दण्ड
- (4) कार्य दण्ड

शुक्र के अनुसार केवल उत्तम पुरूष एवं मध्यम पुरूष को वाक्दण्ड या धिक्दण्ड दिया जाना उचित है, अधम पुरूषों पर इनका सुधारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है, अतः ये दण्ड इनके लिए नहीं है।

अपराध और दण्ड

शुक्र ने अपराध व दण्ड के पारस्परिक सम्बन्ध को स्वीकार किया है। जो राजा अपराध व दण्ड के इस सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए कार्य करता है, उससे प्रजा सन्तुष्ट रहती है। केवल अपराधी ही दण्डनीय है। निरपराधी सदैव अदण्डनीय है। दण्ड की मात्रा, अपराध के अनुसार ही होनी चाहिए। उसे मनमाने ढ़ग से दण्डित नहीं किया जा सकता। राजा को दण्ड देने में अत्यधिक कठोर नहीं होना चाहिए। शुक्र ने एक ही प्रकार के अपराध के लिऐ उत्तम, मध्यम, व अधम पुरूषों के लिए अलग-अलग दण्डों की व्यवस्था की है जिससे शुक्र की दण्ड नीति का विषमतावादी पक्ष स्पष्ट होता है। परन्तु शुक्र ने ऐसे अपराधों का भी उल्लेख किया है, जिनमें दण्ड सबको समान दिया जाता है, जैसे- राजद्रोह। यह उल्लेखनीय है कि शुक्र ने मनु की तुलना में दण्ड के क्षेत्र में अधिक समतावादी व्यवस्था को अपनाया है। आधुनिक दण्ड सिद्धान्त की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि शुक्र ने प्रतिकारात्मक दण्ड सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है परन्तु शुक्रनीति में अवरोधक, निरोधक और सुधारात्मक दण्ड सिद्धान्तों को अवश्य ही स्वीकार किया गया है।]

परराष्ट्र नीति

शुक्र ने प्राचीन भारतीय आचार्यों की परम्परा के अन्तर्गत ही 'पर-राष्ट्र सम्बन्धों' अर्थात् अपने राज्य एवं अन्य राज्यों के आपसी सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। अध्ययन की दृष्टि से हम इन विचारों को दो प्रमुख भागों में विभाजित कर सकते है -

- (1) सैद्धान्तिक पक्ष
- (2) व्यावहारिक पक्ष।

परराष्ट्र सम्बन्धों का सैद्धान्तिक

शुक्र ने कौटिल्य के समान मण्डल सिद्धान्त का उल्लेख नहीं किया, परन्तु चार प्रकार के राज्यों के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

- (1) स्वयं विजिगीषु राजा (विजय की इच्छा रखने वाला का राज्य)
- (2) मित्र राज्य
- (3) शत्रु राज्य
- (4) उदासीन राज्य।

शुक्र ने राज्यों के वर्गीकरण का आधार उनकी भौगोलिक स्थिति को नहीं माना है अपितु विजिगीषु राजा एवं अन्य राज्यों के बीच उनके राजहित की स्थिति को माना है।

नीति के उपाय

शुक्र ने परराष्ट्र नीति के संचालन में राजहित एवं शक्ति तत्व को पर्याप्त महत्व दिया है। उनके अनुसार प्रत्येक राजा अपने राजहित को ही साध्य मानता है और जब विजिगीषु राजा अन्य राज्यों के सन्दर्भ में अपनी शक्ति के अनुसार नीति के उपायों एवं षड्गुण मंत्र के साधनों का कुशलतम प्रयोग करता हैं तो उसे सफलता मिलती है। शुक्र के अनुसार, जिस प्रकार राजा द्वारा सर्प, हाथी तथा सिंह को अपने वश में किया जाता है, उसी प्रकार से राजा को यथायोग्य उपायों से मित्र तथा शत्रु को अपना वशवर्ती बनाना चाहिए। शुक्र ने नीति के चार परम्परागत उपायों का ही उल्लेख किया है -

(1) साम (2) दान (3) भेद (4) दण्ड।

साम नीति का प्रयोग, मित्र व शत्रु दोनों के विरूद्ध ही किया जा सकता है। शांति व मैत्री की नीति से जहां मित्रता अधिक मजबूत होती है। वहीं शत्रु राजा के प्रति भी सहायता व सहयोग निश्चित होता है। शत्रु के प्रति सामनीति का प्रयोग दोनों राज्यों की आपसी सुरक्षा में अभिवृद्धि करना है।

दाम नीति का प्रयोग भी शत्रु व मित्र दोनों के प्रति किया जाता है। मित्र राजा से यह कहना कि मेरी सभी वस्तुएँ, यहाँ तक कि जीवन भी, तुम्हारा है, मित्र के प्रति दान नीति कहलाती हैं। शत्रु राजा को प्रत्यक्ष धन देना उसके प्रति दान नीति कहलाती है।

भेद नीति के प्रयोग को शुक्र ने मित्र के विरूद्ध अनुचित माना है, किन्तु कुछ स्थितियों में उचित भी माना है। शत्रु राजा के प्रति तीन प्रकार से भेद नीति का प्रयोग किया जा सकता है -

(1) शत्रु राजा को सहायकों व साधनो की दृष्टि से कमजोर करना

(2) शत्रु के विरूद्ध अन्य शक्तिशाली राजा का आश्रय लेना

(3) शत्रु से हीन बल वाले राजा का साथ देकर उसे शक्तिशाली बना देना।

इसमें अतिरिक्त भेद के द्वारा शत्रु राजा व उसकी राजभक्त प्रजा के मध्य मतभेद उत्पन्न कराए जा सकते है।

दण्डनीति का प्रयोग भी मित्र व शत्रु दोनों के विरूद्ध किया जा सकता हैं। मित्र राजा को यह चेतावनी देना कि वह यदि मनमाना व्यवहार करेगा तो मैं तुम्हारा मित्र नहीं रहूँगा - दण्ड नीति है। जबकि शत्रु राजा के दोष प्रकट करना, धन नष्ट करना, युद्ध में कष्ट देना उसके प्रति दण्ड नीति है। यद्यापि शुक्र द्वारा मित्र राजाओं के प्रति भेद व दण्ड नीति को अनैतिक कहा जा सकता है, लेकिन यह उनकी यथार्थवादी नीति है। शुक्र के अनुसार राजा को पर्याप्त सोच-विचार कर ही इन चारों नीति उपायों का प्रयोग करना चाहिए। शुक्र ने अत्यन्त प्रबल शत्रु के लिए साम और दान का, अपने से अधिक बलवान के लिए साम और भेद का, अपने बराबर शक्ति वाले के लिए भेद और दण्ड का प्रयोग उचित माना है।

षड्गुण नीति

इसका अर्थ है - 6 गुण वाली विशिष्ट धारणा। यद्यपि कौटिल्य के समान शुक्र ने इन गुणों का विस्तार से विवेचन नहीं किया है। इसके 6 गुण निम्नलिखित हैं -

(1) **सन्धि** :- शुक्र ने सन्धि को ऐसा साधन माना है, जिसके द्वारा शक्तिशाली शत्रु से हीनबल राजा की मित्रता होती है अर्थात् हीनबल राजा को सुरक्षा प्राप्त होती है। सन्धि के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा है, "जिस प्रकार से घने कांटो से घिरे हुए बांसों के समूह को कोई काट या उखाड़ नहीं सकता है, उसी प्रकार से म्लेच्छों से भी सन्धि किए हुए राजा को भी, कोई पराजित नहीं कर सकता।" शुक्र एकमात्र ऐसे प्राचीन आचार्य है, जो अपने हित की पूर्ति के लिए अनार्य राजा से भी सन्धि को भी उचित मानते है।
(2) **विग्रह** :- विग्रह का अर्थ है - राजाओं के मध्य शान्ति व सहयोग की नीति का अन्त एवं तनाव व संघर्ष का आरम्भ। जिस कार्य द्वारा शत्रु को पीड़ित किया जाए और अधीन किया जाए, उसे विग्रह कहते है। वस्तुतः विग्रह ऐसी नीति है, जिसके द्वारा शक्तिशाली राजा, निर्बल राजा को पीड़ित करके, उसे बिना प्रत्यक्ष युद्ध के ही, अपने अनुसार चलने को विवश करता है। यही कारण है कि बुद्धिमान राजा को सन्धि से बंधे हुए शत्रु का भी विश्वास नहीं करना चाहिए। इन्द्र द्वारा वृत्रासुर-वध का उदाहरण देते हुए शुक्र ने कहा है कि इन्द्र ने द्रोह न करने की प्रतिज्ञा के साथ सन्धि करके भी ऐसा किया था। किन्तु शुक्र

ने बलवान शत्रु से विग्रह का निषेध किया है। केवल रक्षा के लिए कोई विकल्प शेष न होने पर ही अन्त में विग्रह को शुक्र ने उचित माना है।

(3) **यान** :- जब अपने इच्छित हित की प्राप्ति के लिए शत्रु राजा का नाश आवश्यक होता है और इस उद्देश्य से उस पर आक्रमण किया जाता है, तब इसे यान कहते है। यान का नकारात्मक उद्देश्य है, शत्रु का नाश करना। किन्तु सकारात्मक उद्देश्य है, आर्थिक सैनिक, व राजनीतिक लाभ की प्राप्ति। केवल शक्तिशाली राजा को निर्बल राजा के विरूद्ध ही यान का प्रयोग करना चाहिए।

(4) **आसन** :- जहां अन्य आचार्यो ने आसन का अर्थ - शत्रु राजा के प्रति उपेक्षा तटस्थता एवं निष्क्रियता की नीति माना है। शुक्र ने इसे शत्रु राजा के किले या नगर की ऐसी सैनिक घेराबंदी माना है, जो स्वयं की रक्षा करते हुए शत्रु को अपनी शर्तों पर सम्पर्क के लिए विवश करे। आसन द्वारा शत्रु राजा की रसद पंक्ति नष्ट कर दी जाती है। युद्ध सामग्री एवं भोजन सामग्री ईधन आदि की कमी होने पर शत्रु पक्ष में आन्तरिक असंतोष उत्पन्न होता है। और तब वह शत्रु राजा विवश होकर अधीनता स्वीकार कर लेता है।

(5) **आश्रय** :- जब किसी शक्तिशाली शत्रु राजा द्वारा निर्बल राजा का राज्य नष्ट कर दिया जाये अथवा ऐसी पराजय का संकट आ जाये तो निर्बल राजा को अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य शक्तिशाली राजा का आश्रय लेना चाहिए, जिससे उसकी शक्ति मे वृद्धि हो सके।

(6) **द्वैधी भाव** :- इसका शाब्दिक अर्थ है एक ही समय में दो भावों का पाया जाना जो प्रकट रूप में दिखाया जाता है। गुप्त रूप में उससे ठीक विपरीत आचरण किया जाता है। प्रकट रूप में मित्रता एवं गुप्त रूप में शत्रुता इसकी विशेषता है। सेना के संचालन में भी द्वैधी भाव का शुक्र ने उल्लेख किया है। सेना को अनेक टुकडियों में बांटकर शत्रु को प्रकट रूप में अपने सैनिक बल के बारे में रखना द्वैधी भाव है।

पर-राष्ट्र सम्बन्धों का व्यावहारिक पक्ष

शुक्र ने व्यावहारिक संचालन की दृष्टि से चार प्रमुख संस्थागत साधनों का उल्लेख किया है -

(1) दूत (2) गुप्तचर (3) सेना (4) युद्ध।

दूत : दूत को शुक्र ने मंत्रिपरिषद के 10 सदस्यों में भी स्थान दिया है। वह कूटनीति एवं विदेश नीति से सम्बन्धित कार्यों को करता है। वह राजा का ऐसा भ्रमणशील प्रतिनिधि है जो अन्य राजाओं से संवाद स्थापित करता है। अतः उसे देश व काल की स्थिति समझाने

वाला भाषण कला में कुशल, अन्य की हृदयागत भावना समझने वाला एवं निर्भीक स्वभाव का होना चाहिए।

गुप्तचर : शुक्रनीति में अर्थशास्त्र के समान गुप्तचर की व्यवस्था का व्यापक उल्लेख नहीं किया गया है। गुप्तचर के प्रकारों के विषय में भी शुक्रनीति मौन है, गुप्तचर प्रशासन बाह्य एवं आन्तरिक शत्रुओं से राजा एवं राज्य की रक्षा का प्रमुख साधन है। गुप्तचर का कार्य है- राजा के शत्रु सेवकों व प्रजा के व्यवहार को जानना व उसकी जानकारी राजा को देना। राजा को भी उसकी सत्यता की परीक्षा करते रहना चाहिए तथा असत्यवादी गुप्तचर को दण्डित करना चाहिए।

सेना : शुक्र के अनुसार सेना व्यक्तियों, पशुओं आदि का समूह है, जो अस्त्र, शस्त्र से सुसज्जित होती है। सेना के कारण ही शत्रु का नाश सम्भव होता है तथा कोष, राज्य व पराक्रम की वृद्धि होती है। शुक्र ने सैनिक अनुशासन व आचारसंहिता पर भी विचार किया है। राजा को सदैव ऐसे प्रयत्न करने चाहिए कि उसकी सेना में भेद उत्पन्न न हो जबकि शत्रु सेना में अवश्य ही भेद उत्पन्न हो। युद्ध में विजय प्राप्त होन पर सैनिकों को भी लाभ मिलना चाहिए और उन्हें लूट के माल में भागीदार बनाकर संतुष्ट रखना चाहिए।

युद्ध : शुक्र ने बाह्य चुनौतियों से रक्षा के लिए और अपने राज्य के विस्तार के लिए युद्ध की आवश्यकता को स्वीकार किया है। सभी राजा राज्य विस्तार की कामना रखते है। इसलिए परस्पर शत्रुता भी रखते है। शुक्र के अनुसार जब नीति के विभिन्न उपाय एवं षड्गुण मंत्र से भी सफलता नहीं मिले, तब अन्तिम साधन के रूप में युद्ध को अपनाना चाहिए। शुक्रनीति प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में संभवतः एक मात्र ग्रन्थ है, जिसमें युद्ध को परिभाषित किया गया है। शुक्र के अनुसार, परस्पर शत्रु भाव रखते हुए दो राजाओं का अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करना युद्ध है। शुक्र ने युद्ध में नैतिक नियमों के पालन एवं उल्लंघन के आधार पर, दो प्रकार के युद्ध का उल्लेख किया गया है। **धर्म युद्ध, एवं कूटयुद्ध**। शुक्र ने धर्म-युद्ध के नैतिक नियमों का विवरण दिया है। किन्तु उन्होंने मनु की तरह कूटयुद्ध पर धर्म युद्ध की श्रेष्ठता का समर्थन नहीं किया है। शुक्र का स्पष्ट मत है कि धर्म युद्ध या कूट युद्ध जिसमें शत्रु का विनाश हो वही उचित है। वास्तव में शुक्र ने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए धर्म युद्ध पर कूट युद्ध को वरीयता दी है। शुक्र ने युद्ध को पापपूर्ण एवं जघन्य कृत्य नहीं माना, अपितु उल्लेख किया है कि युद्ध में मरने पर क्षत्रिय को उत्तम फल की प्राप्ति होती है। क्षत्रिय के लिए युद्ध को पवित्र कर्तव्य मानने का आग्रह शुक्र की इस अपेक्षा को व्यक्त करता है कि वह अवसर आने पर युद्ध से पलायन न करें।

पराजित पक्ष के प्रति व्यवहार : शुक्र ने युद्ध में विजय के बाद विजयी राजा को विजित राज्य व उसकी प्रजा के प्रति दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही न करने का परामर्श दिया है। उन्होंने

विजयी राजा को विजित राज्य की प्रजा को प्रसन्न रखने का निर्देश दिया है। शुक्र ने विजयी राजा से अपेक्षा की है कि वह शत्रु को जीतकर योग्यतानुसार उससे कर ग्रहण करे, परिस्थिति के अनुसार शत्रु के राज्य के आधे अंश या सम्पूर्ण राज्य पर अपना आधिपत्य कर ले। उसके पश्चात् शत्रु की प्रजा को हर प्रकार से प्रसन्न रखे तथा अपनी प्रजा की भांति ही उसका पालन करे। शुक्र ने राजा को यह परामर्श भी दिया है कि वह विजित राज्य में कार्यरत मन्त्रि परिषद को हटाकर अपने प्रति निष्ठा रखने वाले नवीन मन्त्रि परिषद की नियुक्ति कर दे। यदि वह पराजित राजा का राज्य छीन ले तो उसे, जागीर आदि जीविका के लिए प्रदान करे। विजेता राजा को जीते गए राज्य में स्वेच्छाचारी ढंग से शासन नहीं करना चाहिए। उसकी पुत्रवत् रक्षा करते हुए उसे प्रसन्न रखा जाना चाहिए और उसे अपना बना लेना चाहिए। वस्तुतः शुक्र के इस विवरण में यह भाव निहित है कि पराजित राज्य की प्रजा एवं समाज के धार्मिक नैतिक व सामाजिक मूल्यों की रक्षा की जानी चाहिए और प्रजा का पालन भी किया जाना चाहिए।

शुक्र का महत्व व मूल्यांकन

मनु मूलतः धर्मशास्त्रीय विचारक है, कौटिल्य अर्थशास्त्रीय विचारक है, जबकि शुक्र राजनीतिक विचारक हैं। इसीलिए प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में उनका विशिष्ट स्थान व महत्व है। अल्टेकर का मत है, "शुक्रनीति में प्रशासनिक महत्व की ऐसी अनेक सूचनाऐं मिलती है, जो अर्थशास्त्र सहित अन्य किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। यह सत्य है कि शुक्र ने राज्य के सैद्धान्तिक पक्षों की विस्तार से विवेचना नहीं की है, परन्तु प्राचीन भारत में व्यावहारिक पक्ष पर ही प्रकाश डालने की परम्परा थी। अध्ययन की सुविधा के लिए शुक्र के योगदान को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में समझा जा सकता है -

(1) दण्डनीति को सर्वप्रमुख विद्या के रूप में मान्यता : शुक्र ने दण्डनीति शास्त्रीय औशनस सम्प्रदाय का अनुकरण करते हुए सैद्धान्तिक एवं धर्मशास्त्रीय ज्ञान पर व्यावहारिक व लौकिक ज्ञान की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया है। दण्डनीति के प्रयोग से राजा को सभी फलों की सिद्धि होती है, यहां तक कि वह सतयुग की स्थापना भी कर सकता है।

(2) उदार एवं व्यावहारिक सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिपादन : शुक्र ने समाज-संगठन के आधार के रूप में वर्ण व्यवस्था को मान्यता दी है। किन्तु उन्होंने कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था की धारणा का समर्थन किया है। इस प्रकार शुक्र ने जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था में निहित स्वार्थ एवं अयोग्यता की उपेक्षा करने की कोशिश की है और कर्म, योग्यता व प्रतिभा के आधार पर वर्ण व्यवस्था के पुनः निर्माण का विचार

दिया है। वर्ण एवं जाति का महत्व विवाह एवं भोजन सामुदायिक जीवन में होता है। राष्ट्र प्रशासन जैसे सार्वजनिक व राजनीतिक कार्य में वर्ण एवं जाति की तुलना में कर्मशील व गुण पर आधारित योग्यता व विशेषज्ञता का ही महत्व होता है। मनु की तुलना में शुक्र के विचार पर्याप्त उदार हैं और उस सामाजिक परिवर्तन की ओर संकेत करते है जो उनके युग में जन्म ले रहा था।

(3) राज्य का सावयव सिद्धान्त : भारतीय परम्परा का अनुकरण करते हुए 'सप्तांग राज्य' की धारणा को स्वीकारा है। उन्होंने राज्य के सातों अंगों की तुलना मानव शरीर के अंगो से की है। शुक्र ने राज्य को वृक्ष की भी उपमा दी है, राज्य जैसी अमूर्त रचना को स्पष्ट करने की दृष्टि से शुक्र का यह विवरण महत्वपूर्ण है।

(4) राज्यों का वर्गीकरण : शुक्रनीतिसार ऐसा एकमात्र प्राचीन भारतीय ग्रन्थ है, जिसने एक सुनिश्चित आधार पर राजतन्त्रीय राज्य के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख किया है। यह वर्गीकरण प्राचीन भारत की राजतन्त्रात्मक साम्राज्यवादी शासन प्रणाली की ओर भी संकेत देता है।

(5) राजपद पर यथार्थवादी ढंग से विचार : शुक्र ने मनु के समान राजा को 'नर देव' नहीं माना है। शुक्र का स्पष्ट मत है कि राजपद की समस्त गरिमा के उपरान्त भी राजा मूलतः प्रजा का सेवक ही होता है और इसी रूप में उसे कर प्राप्त करने का अधिकार दिया है। शुक्र ने प्रजा पालन को राजा का आधारभूत कर्तव्य माना है।

(6) प्राचीन मन्त्रि परिषद का विकस : शुक्रनीति ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें स्पष्ट रूप से मन्त्रियों के वरीयता क्रम, उनके वेतन में अन्तर, कार्यालय आदि को प्रकट किया गया है। शुक्र ने ही सर्वप्रथम मन्त्रिपरिषद की विभागीय पद्धति, मन्त्रियों के विभाग परिवर्तन, मन्त्रालयों के संगठन आदि का उल्लेख किया है। शुक्र ने ही सर्वप्रथम मन्त्रि परिषद की सुनिश्चित एवं लिखित कार्यप्रणाली का भी स्पष्ट उल्लेख किया है।

(7) कोष, अर्थ-व्यवस्था एवं प्रजाहितकारी राज्य : यह उल्लेखनीय है कि काल-सापेक्ष, **आदर्श कोष** की धारणा का उल्लेख केवल शुक्र ने ही किया है। यह कोष इतना संपन्न होना चाहिए कि कर जमा न होने पर भी 20 वर्ष तक प्रजा व सेना की रक्षा करने में समर्थ हो। शुक्र एकमात्र ऐसे राजशास्त्री है, जिन्होंने राज्य की आय-व्यय की वार्षिक योजना का उल्लेख किया है। मनु, कौटिल्य आदि आचार्यों की तुलना में शुक्र का व्यय विवरण अधिक स्पष्ट, निश्चित एवं नियमबद्ध है। शुक्र ने अपने व्यय के विवरण में जन कल्याण एवं समाज कल्याण पर भी बल दिया है।

(8) विकसित प्रशासनिक व्यवस्था का विवरण : शुक्र की प्रशासनिक व्यवस्था मनुस्मृति की तुलना में पर्याप्त जटिल एवं विकसित है। इसमें लिखित कार्यालय पद्धति, राजसेवकों की आचार संहिता, न्यूनतम एवं अधिकतम वेतन के सिद्धान्त आदि का भी उल्लेख किया गया है। शुक्र ने कार्मिकों की सेवा अवधि, पदोन्नति, पद-अवनति, प्रशिक्षण, गणवेश आदि के नियमों का भी उल्लेख किया है। शुक्र ने प्रशासन की इस कार्मिक व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ ऐसी व्यवस्थाओं का भी उल्लेख किया है जो आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के पर्याप्त निकट प्रतीत होती हैं। उन्होनें सामान्य विश्राम, अवकाश, स्वास्थ्य अवकाश, पेंशन सहित सेवानिवृति, पारिवारिक पेंशन, भविष्य निधि, बोनस आदि का भी उल्लेख किया है।

(9) न्याय प्रशासन का श्रेष्ठ विवरण : यद्यपि शुक्र ने न्याय प्रशासन में धर्मशास्त्रीय परम्परा का अनुकरण किया है, किन्तु इसके साथ ही उन्होनें न्याय प्रशासन में कुछ नए तत्वों का उल्लेख किया है। न्याय सभा के लिए सदस्यता में केवल ब्राह्यण वर्ण की अनिवार्यता नहीं, जूरी प्रणाली, सम्मन, जमानत, अपील एवं पुनः विचार, नियोगी (वकील) आदि इसमें सम्मिलित है।

(10) पर-राष्ट्र सम्बन्धों की सैद्धान्तिक एवं यथार्थवादी विवेचना : जहां इस क्षेत्र में मनु आदर्शवादी अधिक हैं, वहीं शुक्र ने यथार्थवादी सम्बन्धों का प्रमुख आधार ही राज्यों की आपसी अविश्वसनीयता को स्वीकार किया है। उन्होंने राजहित एवं शक्ति के तत्वों को ही विदेश नीति के संचालन में प्रमुख स्थान दिया है, जो आधुनिक काल के समान है। यद्यपि शुक्र ने पराजित राजा एवं पराजित प्रदेश के आदर्शवादी पक्ष का समर्थन किया है किन्तु ऐसे व्यवहार का अन्तिम उद्देश्य यथार्थवादी ही है। ऐसी नीति पराजित पक्ष पर विजेता राजा की विजय को स्थायित्व प्रदान करती है।

(11) शुक्र ने राज्य एवं राष्ट्र के मध्य भेद को स्पष्ट किया है तथा यह स्पष्ट किया है कि राष्ट्र सम्प्रदाय का नियंत्रण ही उसे राज्य का स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकार शुक्र ने अपने युग की राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत पाए जाने वाली राजनीतिक व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। बेनी प्रसाद का मत है कि शुक्रनीतिसार प्राचीन हिन्दू समाजिक व राजनीतिक परम्परा में लिखा गया ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसने सभी विषयों को स्पर्श किया है और उन्हें संवारा व समृद्ध भी किया है। अल्तेकर के अनुसार ''प्राचीन भारतीय राजनीति के अध्ययनकर्ताओं के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके साथ ही भारतीय चिन्तन परम्परा में उनका विशिष्ट स्थान है।''